**E-Learning material prepared by Dr. Dhananjay Vasudeo Dwivedi, Assistant Professor, Department of Sanskrit, Dr. Shyama Prasad Mukherjee University, Ranchi**

# निरुक्त में षड्भाविकार

डा० धनञ्जय वासुदेव द्विवेदी

सहायक प्रोफेसर, संस्कृत विभाग,

डा० श्यामा प्रसाद मुखर्जी विश्वविद्यालय, राँची

निरुक्तकार यास्क ने आचार्य वार्ष्यायणि को उद्धृत करते हुए भाव के छः प्रकारों को स्पष्ट किया है-

"षड् भावविकारा भवन्तीति वार्ष्यायणिः। जायते, अस्ति, विपरिणमते, वर्धते, अपक्षीयते विनश्यति इति"।

अर्थात् वार्ष्यायणि  के मत में छः प्रकार के भाव विकार होते हैं- जन्म लेना, होना, बदलना, बढ़ना, घटना तथा नष्ट होना।

वस्तुतः आचार्य वार्ष्यायणि का विचार यह है कि उत्पन्न होने वाले सभी पदार्थों में ये छः विकार देखे जाते हैं। इन विकारों का स्वभाव यह है कि वे अपने से पहले आने वाले विकार के समय में ही सूक्ष्म रूप से अपना स्वरूप धारण करने लगते हैं और अपने से पहले वाले विकार के तिरोहित हो जाने पर अपने स्वरूप को पूर्णतः स्पष्ट करते हैं।

यहाँ प्रथम भाव विकार है 'जायते' अर्थात् उत्पन्न होना अथवा जन्म लेना। बीज से जब अंकुर निकलता है तब यह कहा जाता है कि अंकुर पैदा हुआ। यद्यपि 'पैदा होना' के साथ-साथ 'होना रूप' क्रिया या भाव विकार भी है ही। परन्तु यहाँ 'जायते' 'उत्पन्न होने' रूप भाव विकार को ही कहता है, 'होने' रूप भाव विकार को नहीं कहता और न उस 'भाव' का प्रतिषेध करता है। कहता इसलिये नहीं कि 'जायते' का अर्थ केवल 'होना' न होकर 'उत्पन्न होना' अर्थ है और निषेध इसलिये नहीं करता कि 'उत्पन्न होना' रूप भाव विकार हो ही तब कह सकता है जब कोई पदार्थ हो, अर्थात् वहाँ 'होना' रूप भाव-विकार भी हो।

दूसरा भाव-विकार है 'अस्ति' जिसका अर्थ है 'होना', 'अपनी सत्ता धारण करना'। वैयाकरणों ने भी 'अस्ति' का अर्थ किया है 'आत्म-धारणानुकूलो व्यापारः'। 'अस्ति', 'भवति', 'विद्यते', 'वर्तते' ये सभी धातुएँ सामान्य सत्ता अथवा 'भाव' को ही कहती है, जिसका अर्थ होता है - अपने को 'धारण करना'। इसीलिये यास्क ने 'भवति इति भावस्य' कहकर 'सत्ता' को भाव सामान्य के उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किया है। कैयट ने इसी दृष्टि से 'आत्मभरणवचनो भवतिः' कहा। भर्तृहरि ने 'अस्ति' के अर्थ के विषय में चर्चा करते हुए यह कहा कि अपने को अपने द्वारा धारण करने की स्थिति को 'अस्ति' पद के द्वारा कहा जाता है-'आत्मानम् आत्मना विभ्रद् अस्तीति व्यपदिश्यते'।

तीसरा भाव विकार है- 'विपरिणमते' जिसका अभिप्राय है 'परिवर्तन' (बदलना)। यहाँ 'परिवर्तन' का अभिप्राय वह सामान्य विकार है जिसमें वस्तु अपने मौलिक धर्म, तत्त्व या स्वभाव से रहित नहीं होता। जैसे मानव शरीर में विविध परिवर्तन हो सकते हैं, परन्तु शरीर के स्वभाव में कोई भी परिवर्तन नहीं होता।

चौथा विकार है 'वर्धते' अर्थात् 'वृद्धि' (बढ़ना)। यह 'वृद्धि' दो प्रकार की हो सकती है। पहली अपने शरीर की वृद्धि तथा दूसरी अपने से सम्बद्ध या संयुक्त पदार्थों की वृद्धि अथवा पुष्टि। यहाँ निरुक्त में 'स्वाङ्ग' शब्द का प्रयोग शरीर के अर्थ में किया गया है- शरीर के अङ्ग के अर्थ में नहीं। पहले प्रकार की 'वृद्धि' की दृष्टि से 'वर्धते शरीरेण' यह उदाहरण दिया गया तथा दूसरे प्रकार की दृष्टि से 'वर्धते विजयेन' उदाहरण दिया गया। इस प्रकार के और उदाहरण 'वर्धते धनेन', 'वर्धते यशसा' इत्यादि हो सकते हैं। निरुक्त में 'वर्धते शरीरेण' यह उदाहरण 'वर्धते विजयेन' के पहले आना चाहिये।

पांचवा भाव-विकार है 'अपक्षीयते' अर्थात् 'ह्रास' अथवा 'अपक्षय' अथवा घटना। 'अपक्षय' से 'विनाश' को छठे भाव-विकार के रूप में गिनाया गया है। यह 'ह्रास' भी 'वृद्धि' के समान दो प्रकार का हो सकता है- पहला शरीर का ह्रास तथा दूसरा अपने से युक्त या सम्बद्ध पदार्थों का ह्रास। पहले का उदाहरण है- 'अपक्षीयते शरीरेण' तथा दूसरे का उदाहरण है– 'अपक्षीयते अपजयेन' इत्यादि। इसीलिये यास्क ने यहाँ केवल "अपक्षीयते इत्येतेनैव व्याख्यातः प्रति लोमम्"- इतना कहना ही पर्याप्त समझा।

छठा भाव-विकार है 'विनश्यति' अर्थात् 'विनाश' अथवा 'नाश'। यह इन छः भाव-विकारों में अन्तिम विकार है। जब 'ह्रास' अपनी अन्तिम सीमा पर आ जाता है तब 'विनाश' का प्रारम्भ माना जाता है। इसी कारण यह 'विनश्यति' पद अन्तिम 'भाव-विनाश' की प्रारम्भिक अवस्था को कहता है। परन्तु उससे पूर्व के भाव विकार 'अपक्षय' को न तो कहता ही है और न उनका निषेध ही करता है। कहता इसलिये नहीं कि 'विनश्यति' का अर्थ 'अपक्षय' अथवा 'ह्रास' न होकर 'पूर्ण विनाश' हुआ करता है और निषेध इसलिये नहीं कह सकता है कि 'अपक्षय' के हुए बिना 'विनाश' हो ही नहीं सकता। यास्क के अनुसार, वार्ष्यायणि का यह भी कहना है कि इन छः विकारों के अतिरिक्त जितने भी भाव-विकार उपलब्ध होते हैं, उन सबको इन छः विकारों के अन्तर्गत ही मान लेना चाहिये।

अनुमान है कि आचार्य वार्ष्यायणि ने भाव-विकारों के विषय में अपना कोई विशिष्ट ग्रन्थ लिखा होगा जिसमें अपनी विस्तृत विवेचना प्रस्तुत की होगी। परन्तु आज न तो उनका ग्रन्थ उपलब्ध है और न उनके विस्तृत विचार।